

संपादकीय

खुले कुएँ, बंद व्यवस्था और मासूम मौतें

मध्यप्रदेश में हर हफ्ते एक नई मासूम जान चली जाती है। कभी कोई बच्चा खुले बोरवेल में गिर जाता है तो कभी किसी खुले कुएँ में। हर हादसे के बाद वही फिसी-पिट्टी कहानी दोहराई जाती है—मुआवजे की घोषणा, जांच के आदेश और कुछ दिनों की हलचल। इसके बाद सब कुछ फिर सामान्य हो जाता है, मानो किसी की जान की कोई कीमत ही न हो। सच यह है कि ये प्राकृतिक दुर्घटनाएँ नहीं, बल्कि प्रशासनिक लापरवाही से होने वाली मौतें हैं।

प्रदेश में वर्ष 2023 के सर्वे में 3,045 कुएँ असुरक्षित पाए गए थे। इनमें अधिकांश पर सुरक्षा के लिए मुंडेर तक नहीं थी। रिपोर्ट तैयार हुई, बैठकों का दौर चला, निर्देश जारी हुए, लेकिन जमीन पर हालात नहीं बदले। वर्ष 2026 तक भी स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं दिखाई देता। सवाल यह है कि आखिर सुरक्षा जैसे बुनियादी कार्य को पूरा करने में इतनी देरी क्यों हो रही है?

शहडोल, रायसेन, झाबुआ, सिवनी और प्रदेश के कई अन्य जिलों में एक जैसी तस्वीर दिखाई देती है। बोरवेल खोदे जाते हैं, काम पूरा होने के बाद उन्हें खुला छोड़ दिया जाता है और जिम्मेदार एजेंसियाँ आंखें मूंद लेती हैं। पंचायत, ठेकेदार और संबंधित विभाग अपनी-अपनी जिम्मेदारी एक-दूसरे पर डालते रहते हैं। इस लापरवाही की सबसे बड़ी कीमत उन परिवारों को चुकानी पड़ती है, जिनके घर का मासूम हमेशा के लिए उनसे बिछड़ जाता है।

इतना बड़ा प्रशासनिक ढांचा, पर्याप्त बजट और हजारों कर्मचारियों के बावजूद यदि एक खुले कुएँ पर मजबूत मुंडेर भी नहीं बनाई जा सकती, तो यह केवल संसाधनों की नहीं बल्कि इच्छाशक्ति की कमी है। अक्सर तब तक कोई कार्रवाई नहीं होती, जब तक कोई बड़ा हादसा न हो जाए या मीडिया का कैमरा मौके पर न पहुंच जाए। हादसे के बाद संवेदना जताना आसान है, लेकिन उन्हें रोकने के लिए समय रहते कदम उठाना ही वास्तविक जिम्मेदारी है।

मुआवजा किसी मासूम की जिंदगी को भरपाई नहीं कर सकता। जांच समितियाँ तभी सार्थक होंगी, जब उनको रिपोर्ट के आधार पर दोषियों पर ठोस कार्रवाई हो। जवाबदेही तय किए बिना ऐसी घटनाओं पर रोक लगाना संभव नहीं है। जिस अधिकारी, इंजीनियर, ठेकेदार या पंचायत को लापरवाही से किसी की जान गई हो, उसके खिलाफ कठोर कानूनी कार्रवाई होनी चाहिए। आज देश आधुनिक तकनीक, तेज रफ्तार परिवहन और विकास के नए आयामों को बात रहा है, लेकिन यदि गांवों में बच्चे सुरक्षित नहीं हैं तो विकास के दावों पर प्रश्नचिह्न लगाना स्वाभाविक है। किसी भी सभ्य समाज को पहचान उसकी सबसे कमजोर और सबसे मासूम आबादी की सुरक्षा से होती है।

सरकार को अब प्रतीकात्मक घोषणाओं से आगे बढ़ना होगा। प्रदेश के सभी खुले बोरवेल और असुरक्षित कुओं का समयबद्ध सर्वे कराया जाए, उन्हें तत्काल सुरक्षित किया जाए और पूरी प्रक्रिया की सार्वजनिक निगरानी सुनिश्चित की जाए। साथ ही, भविष्य में किसी भी ऐसी घटना पर संबंधित अधिकारियों की व्यक्तिगत जवाबदेही तय की जाए। मासूमों की मौतें आंकड़े नहीं हैं, बल्कि व्यवस्था की विफलता का प्रमाण हैं। अब समय आ गया है कि खुले कुएँ ही नहीं, प्रशासनिक लापरवाही के उन सभी रास्तों को भी हमेशा के लिए बंद किया जाए, जो हर वर्ष कई परिवारों की खुशियाँ निगल जाते हैं।

आजकल

दूध की धारा से बदलेगी मध्यप्रदेश की तस्वीर

किसी भी राज्य की वास्तविक ताकत उसकी मिट्टी और उसके किसान में होती है। जब उसी मिट्टी से अन्न के साथ दूध की धारा भी बहने लगे, तो वह समृद्धि का संकेत बन जाती है। मध्यप्रदेश आज इसी दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है। खेती के साथ पशुपालन अब केवल सहायक व्यवसाय नहीं, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मजबूत आधार बन चुका है।

पिछले कुछ वर्षों में प्रदेश ने दूध उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की है। इसके पीछे यह सोच है कि किसान की आय केवल फसल पर निर्भर नहीं रहनी चाहिए। दूध से होने वाली निर्यात आमदनी ने किसानों को आर्थिक स्थिरता दी है। हर सुबह गांवों से डेयरी समितियों तक पहुंचता दूध और महिलाओं के खातों में सीधे पहुंचने वाली राशि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सकारात्मक बदलाव का संकेत है।

पशुपालन ने किसानों को दोहरी आय का अवसर दिया है। फसल खराब होने की स्थिति में भी दूध से होने वाली आय परिवार का सहारा बनती है। इससे ग्रामीण पलायन पर भी अंकुश लगा है और पोषण स्तर में सुधार की संभावना बढ़ी है। सरकार नस्ल सुधार, टीकाकरण, चारा उत्पादन, डेयरी संयंत्रों और शीत श्रृंखला के विस्तार पर लगातार काम कर रही है, ताकि किसानों को बेहतर मूल्य मिल सके।

हालांकि, आगे की राह में कुछ चुनौतियाँ भी हैं। दूध की गुणवत्ता सुनिश्चित करना, मिलावट पर कठोर नियंत्रण, आधुनिक प्रसंस्करण, मजबूत विपणन व्यवस्था और जैविक अपशिष्ट के बेहतर प्रबंधन पर समान रूप से ध्यान देना होगा। यदि मध्यप्रदेश को दूध उत्पादन के क्षेत्र में अग्रणी बनना है, तो इन पहलुओं पर गंभीरता से काम करना आवश्यक है।

दूध उत्पादन बढ़ाना अपने आप में लक्ष्य नहीं है। वास्तविक उद्देश्य किसान की आय बढ़ाना, परिवारों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना और गांवों को आत्मनिर्भर बनाना है। यदि योजनाएँ प्रभावी ढंग से जमीन पर उतरती रहीं और किसानों को उनका पूरा लाभ मिलता रहा, तो वह दिन दूर नहीं जब मध्यप्रदेश केवल कृषि ही नहीं, बल्कि श्वेत क्रांति के लिए भी पूरी देश में अपनी अलग पहचान बनाएगा।

80 प्रतिशत भारतीय टो जाने का एहसास कर रहे हैं। यह केवल एक आंकड़ा नहीं, बल्कि डिजिटल इंडिया के दावों पर गंभीर सवाल है। जब तक डिजिटल सेवाओं में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित नहीं होगी, तब तक डिजिटल इंडिया का सपना अधूरा ही रहेगा। ओटीटी कंपनियों मनोरंजन के नाम पर ग्राहकों को ऐसे डिजिटल जाल में फंसा रही हैं, जहां उनकी जेब चुपचाप खाली होती रहती है। यह केवल 99 या 199 रुपये का मामला नहीं, बल्कि उपभोक्ताओं के भरोसे का प्रश्न है। जब 1.18 लाख से अधिक लोग एक स्वर में कह रहे हैं कि वे ठगे गए हैं, तो कार्रवाई तुरंत होनी चाहिए। यदि अब भी नियामक नहीं जागे, तो कल यही तरीका हर ऐप और हर वेबसाइट अपना लेगी। ग्राहक भगवान होता है, गुलाम नहीं, और लोकतंत्र में किसी को भी लूट की छूट नहीं मिल सकती। लोकलसर्किल्स के ताजा सर्वे ने इस समस्या को गंभीरता उजागर कर दी है। देश के 324 जिलों से 1.18 लाख से अधिक लोगों ने अपनी राय दी। इनमें 61 प्रतिशत पुरुष और 39 प्रतिशत महिलाएँ थीं। सर्वे के अनुसार

80 प्रतिशत भारतीय मानते हैं कि वे ओटीटी प्लेटफॉर्म पर 'डार्क पैटर्न' जैसी भ्रामक तकनीकों का शिकार हुए हैं। बढ़ती शिकायतों को देखते हुए सरकार से ओटीटी कंपनियों की मनमानी रोकने के लिए कड़े कदम उठाने की मांग की जा रही है।

डार्क पैटर्न कोई तकनीकी शब्द नहीं, बल्कि उपभोक्ताओं को भ्रमित कर उनसे अतिरिक्त पैसा वसूलने की चाल है। यूजर इंटरफेस को इस तरह डिजाइन किया जाता है कि ग्राहक अनजाने में कंपनी के पक्ष में फेंसला कर बैठे। जैसे फ्री ट्रायल समाप्त होने से पहले कोई रिमाइंडर न देना और सीधे पैसे काट लेना, सदस्यता रद्द करने का विकल्प इतना छिपा देना कि वह आसानी से मिले ही नहीं, वार्षिक योजना को प्रमुखता से दिखाकर मासिक योजना को लगभग अदृश्य बना देना, या एक बार कार्ड विवरण दर्ज होने के बाद ऑटो-रिन्यूअल बंद करना बेहद कठिन बना देना। यही डिजिटल ठगी का नया चेहरा है।

नईदुनिया

आत्मनिर्भर भारत की नई उड़ान: बुलेट ट्रेन से हाइड्रोजन और एथेनॉल तक

पिछले कुछ वर्षों में भारत ने आत्मनिर्भरता के मार्ग पर जिस गति से कदम बढ़ाए हैं, वह अभूतपूर्व है। कभी रक्षा क्षेत्र में हम दूसरे देशों पर निर्भर रहते थे, आज हम स्वदेशी मिसाइल, टैंक और लड़ाकू विमान बना रहे हैं। कभी आधुनिक परिवहन के लिए विदेशी तकनीक का इंतजार करते थे, आज बुलेट ट्रेन परियोजना पर काम कर रहे हैं, हाइड्रोजन ट्रेन का परीक्षण कर चुके हैं और मेट्रो नेटवर्क से शहरों को जोड़ रहे हैं। यह बदलाव केवल किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि सोच और आत्मविश्वास में आए परिवर्तन का प्रतीक है। भारत अब अपने दम पर दुनिया की बड़ी चुनौतियों का समाधान खोजने का विश्वास रखता है और ऊर्जा से लेकर परिवहन तक हर क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ रहा है।

भारत की आबादी तेजी से बढ़ रही है। शहरों का विस्तार हो रहा है और लोगों की आवाजाही भी लगातार बढ़ रही है। ऐसे में पारंपरिक परिवहन व्यवस्था पर्याप्त नहीं थी। इसी आवश्यकता को देखते हुए सरकार ने बड़े स्तर पर निवेश किया, जिसके परिणाम आज दिखाई दे रहे हैं। मुंबई-अहमदाबाद बुलेट ट्रेन परियोजना केवल एक रेल परियोजना नहीं, बल्कि आधुनिक तकनीक के हस्तंतरण, रोजगार सृजन और भविष्य की परिवहन व्यवस्था का प्रतीक है। इसी तरह दिल्ली, मुंबई, बंगलुरु, इंदौर, भोपाल सहित अनेक शहरों में मेट्रो नेटवर्क ने यातायात की तस्वीर बदल दी है। इससे यात्रा का समय कम हुआ है, प्रदूषण में कमी आई है और लोगों को सुरक्षित तथा सुविधाजनक परिवहन उपलब्ध हुआ है।

अब अगला बड़ा कदम हाइड्रोजन ट्रेन के रूप में सामने आया है। भारत ने अपनी पहली हाइड्रोजन ट्रेन का परीक्षण किया है। यह ट्रेन डीजल या पारंपरिक ईंधन के बजाय हाइड्रोजन पर चलेगी और इसके संचालन के दौरान प्रदूषण के रूप में केवल जलवाष्प ही निकलेगी। यह तकनीक पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ ऊर्जा सुरक्षा को दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि हाइड्रोजन का उत्पादन देश के भीतर ही किया



जा सकता है। इसकी एक बड़ी विशेषता यह भी है कि यह उन रेल मार्गों पर भी संचालित हो सकती है, जहां विद्युत लाइनें उपलब्ध नहीं हैं। इससे पहाड़ी और दूरदराज के क्षेत्रों तक आधुनिक रेल सेवा पहुंचाना आसान होगा और भारत हाइड्रोजन तकनीक अपनाने वाले अग्रणी देशों की श्रेणी में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज करा सकेगा।

ऊर्जा के क्षेत्र में भी भारत ने आत्मनिर्भरता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। एथेनॉल इसका प्रमुख उदाहरण है। गन्ने, मक्का और अन्य कृषि उत्पादों से तैयार होने वाला एथेनॉल पेट्रोल में मिलाया जाता है। इससे एक ओर कच्चे तेल के आयात पर

निर्भरता कम होती है और विदेशी मुद्रा की बचत होती है, वहीं दूसरी ओर किसानों को उनकी उपज का बेहतर मूल्य मिलता है। भारत पेट्रोल में 20 प्रतिशत एथेनॉल मिश्रण के लक्ष्य की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है। इससे ईंधन आयात का बोझ कम होगा, कीमतों में स्थिरता आएगी और पर्यावरण संरक्षण को भी बल मिलेगा।

रक्षा क्षेत्र में भी आत्मनिर्भरता की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं। कभी हथियारों के लिए विदेशों पर निर्भर रहने वाला भारत आज ब्रह्मोस मिसाइल, तेजस लड़ाकू विमान और स्वदेशी युद्धपोत जैसे आधुनिक रक्षा उपकरणों का निर्माण कर रहा है। 'मेक इन

ईपीएफओ सुधारों से बड़ी निराशा पेंशनभोगियों की उम्मीदें अधूरी

ईपीएफओ यानी कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के हालिया बदलावों से देश के करोड़ों कर्मचारियों और पेंशनभोगियों को बड़ी उम्मीदें थीं, लेकिन अधिसूचना सामने आने के बाद निराशा हाथ लगी। केंद्रीय श्रम एवं रोजगार मंत्रालय की ओर से जारी नए नियमों में कर्मचारी भविष्य निधि, कर्मचारी पेंशन योजना और कर्मचारी जमा-आधारित बीमा से जुड़े प्रावधानों को सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 के अनुरूप ढालने की बात कही गई है, लेकिन इसमें न तो न्यूनतम पेंशन बढ़ाई गई और न ही वेतन सीमा में कोई बदलाव किया गया। इसके बाद संगठित क्षेत्र के कर्मचारियों और पेंशनभोगियों के बीच यह सवाल उठने लगा है कि बढ़ती महंगाई के दौर में 700 से 2000 रुपये तक की मासिक पेंशन से कोई परिवार कैसे गुजारा कर सकता है।

पहले से गठित एक विशेषज्ञ समिति ने सरकार को सिफारिश दी थी कि ईपीएस-95 के तहत न्यूनतम पेंशन कम से कम 10,000 रुपये प्रतिमाह होनी चाहिए, ताकि सेवानिवृत्त व्यक्ति और उसका परिवार सम्मानजनक जीवन जी सके। ईपीएफओ के केंद्रीय न्यासी बोर्ड ने चार महीने पहले सामाजिक सुरक्षा संहिता के प्रावधानों को लागू करने की मंजूरी दी थी। यह प्रक्रिया कर्मचारी रजिस्टर बीमा अधिनियम, 1948 और कर्मचारी भविष्य निधि एवं विविध प्रावधान अधिनियम, 1952 सहित नौ पुराने कानूनों को एकीकृत करने का हिस्सा है। देश में ईपीएफओ के लगभग आठ करोड़ सदस्य हैं और इनके परिवारों पर इन नियमों का सीधा असर पड़ता है, लेकिन इस बार के बदलाव केवल प्रक्रियागत हैं, ढांचागत नहीं।

सबसे बड़ा झटका पेंशनभोगियों को लगा है। ईपीएफओ की वर्ष 2024-25 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार संगठन के 81.5 लाख पेंशनभोगियों में से लगभग 36.8 लाख लोगों को हर महीने 1,000 रुपये या उससे भी कम पेंशन मिलती है। कुछ को 700 रुपये, कुछ को 900 रुपये और अधिकतम 2,000 रुपये तक की पेंशन मिलती है। आज के समय में यह राशि एक परिवार के बुनियादी खर्च के लिए भी पर्याप्त नहीं है। दवाइयों, बिजली, किराए और अन्य आवश्यकताओं के बीच इतनी कम पेंशन को पेंशनभोगी संगठन अपमानजनक बताते हैं।

पेंशनभोगियों और श्रम संगठनों को उम्मीद थी कि इस बार 12 वर्षों से चली आ रही 15,000 रुपये की वेतन सीमा और 1,000 रुपये की न्यूनतम पेंशन में बदलाव होगा, लेकिन सरकार ने दोनों मुद्दों पर चुप्पी साध ली। जबकि महंगाई लगातार बढ़ रही है। वर्ष 2014 में जो वस्तुएँ 100 रुपये में मिलती थीं, आज उनकी कीमत लगभग दोगुनी हो चुकी है। ऐसे में 1,000 रुपये की मासिक पेंशन वास्तविक जरूरतों के सामने बेहद कम साबित होती है।

सरकार का तर्क है कि ईपीएस योजना पर वित्तीय भार बहुत अधिक है और पेंशन बढ़ाने के लिए बड़े बजट की



आवश्यकता होगी। वर्तमान में सरकार ईपीएस के तहत प्रतिवर्ष लगभग 11,000 करोड़ रुपये खर्च करती है। इसके अतिरिक्त लगभग 20.6 लाख गरीब पेंशनभोगियों के लिए अनुदान के रूप में करीब 1,000 करोड़ रुपये भी दिए जाते हैं। हालांकि विशेषज्ञों का मानना है कि यदि सरकार इच्छाशक्ति दिखाए तो सामाजिक सुरक्षा को प्राथमिकता देते हुए इस व्यय में बढ़ोतरी की जा सकती है। उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समिति ने यह भी सुझाव दिया था कि न्यूनतम पेंशन को पहले 3,000 रुपये और बाद में चरणबद्ध तरीके से 10,000 रुपये तक बढ़ाया जाए। साथ ही महंगाई सूचकांक के आधार पर हर वर्ष पेंशन में संशोधन किया जाए। दुर्भाग्य से यह सिफारिश अब तक लागू नहीं हो सकी। पेंशनभोगी संगठन कई बार प्रदर्शन कर चुके हैं और सरकार को ज्ञान भी सौंप चुके हैं, लेकिन ठोस निर्णय अब भी प्रतीक्षित है। आम कर्मचारियों की नाराजगी का एक कारण यह भी है कि वेतन सीमा अब भी 15,000 रुपये ही बनी हुई है, जबकि निजी क्षेत्र में आज अधिकांश कर्मचारियों का मूल वेतन इससे कहीं अधिक है। परिणामस्वरूप वे ईपीएफ में अपनी वास्तविक आय के अनुरूप योगदान नहीं कर पाते और सेवानिवृत्ति के बाद उनकी बचत भी सीमित रह जाती है।

भारत युवा आबादी वाला देश है, लेकिन सामाजिक सुरक्षा का ढांचा अभी भी अपेक्षित स्तर तक मजबूत नहीं बन पाया है। विकसित देशों में सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाली न्यूनतम पेंशन व्यक्ति को सम्मानपूर्वक जीवन जीने का आधार देती है। भारत में भी समय की मांग है कि न्यूनतम पेंशन को यथार्थवादी बनाया जाए। सरकार को महंगाई और जीवन-यापन की लागत को ध्यान में रखते हुए न्यूनतम पेंशन पर पुनर्विचार करना चाहिए, वेतन सीमा बढ़ानी चाहिए और ईपीएफओ को अधिक पारदर्शी बनाना चाहिए। केवल प्रक्रियात्मक बदलाव पर्याप्त नहीं होंगे। वास्तविक सुधार वही होंगे, जिनसे कर्मचारी को सेवानिवृत्ति के बाद सम्मानजनक और सुरक्षित जीवन मिल सके।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

एथेनॉल से आत्मनिर्भरता की राह और भ्रम की राजनीति

भारत ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण पहल पेट्रोल में 20 प्रतिशत एथेनॉल मिश्रण, यानी ई-20, को बढ़ावा देना है। सरकार का उद्देश्य स्पष्ट है—कच्चे तेल के आयात पर निर्भरता कम करना, विदेशी मुद्रा की बचत करना, किसानों की आय बढ़ाना और पर्यावरण संरक्षण को मजबूत करना। लेकिन जैसे ही इस नीति को लागू करने की प्रक्रिया तेज हुई, वैसे ही इसके बारे में अनेक तरह के भ्रम फैलाने जाने लगे। सोशल मीडिया पर दावा किया जा रहा है कि ई-20 से इंजन खराब हो जाएंगे, माइलेज घट जाएगा, बीमा नहीं मिलेगा और आम आदमी पर अतिरिक्त आर्थिक बोझ पड़ेगा। तथ्यों की पड़ताल करने पर इनमें से अधिकांश दावे निराधार साबित होते हैं।

सरकार ने स्पष्ट किया है कि ई-20 का निर्णय किसी जल्दबाजी में नहीं लिया गया है। यह भारतीय शोध संस्थानों, वाहन निर्माताओं और दुनिया के अनेक देशों के अनुभवों के आधार पर तैयार की गई नीति है। भारत में एथेनॉल मिश्रण कोई नई व्यवस्था नहीं है। इसकी शुरुआत कम प्रतिशत मिश्रण से 3-5 वर्ष पहले हो चुकी थी और उत्पादन क्षमता बढ़ने के साथ इसे चरणबद्ध तरीके से आगे बढ़ाया गया है।

एथेनॉल मिश्रण से अब तक हजारों करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत हुई है। गन्ने, मक्का और अनुपयोगी अनाज से एथेनॉल उत्पादन होने के कारण किसानों को अतिरिक्त बाजार मिला है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़े हैं और डिस्टिलरी उद्योग में निवेश भी बढ़ा है। इसका सीधा लाभ किसानों और स्थानीय अर्थव्यवस्था को मिला है। सबसे अधिक भ्रम ईंधन की कार्यक्षमता को लेकर फैलाया जा रहा है। कहा जा रहा है कि ई-20 से इंजन के पुर्जे खराब हो जाएंगे। परीक्षण और वाहन कंपनियों द्वारा किए गए परीक्षणों के अनुसार, जो वाहन ई-20 के अनुरूप निर्मित हैं, उनमें ऐसी कोई समस्या नहीं है। हाँ, बहुत पुराने वाहनों में रबर या प्लास्टिक के कुछ पुर्जों पर सीमित प्रभाव पड़ सकता है, लेकिन इसे गंभीर तकनीकी खराबी नहीं माना गया है। नए वाहनों में पहले से ही ई-20 अनुकूल सामग्री का उपयोग किया जा रहा है।

माइलेज को लेकर भी कई तरह की

ईडिया' अभियान के तहत निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ने से रक्षा उत्पादन को नई गति मिली है और भारत अब रक्षा सामग्री का निर्यात करने वाले देशों में भी अपनी पहचान मजबूत कर रहा है।

इन सभी प्रयासों का मूल आधार आत्मनिर्भरता की सोच है। इसका अर्थ दुनिया से अलग-थलग होना नहीं, बल्कि अपनी क्षमता के बल पर वैश्विक मंच पर बराबरी के साथ खड़ा होना है। भारत हाइड्रोजन तकनीक के क्षेत्र में अनेक देशों के साथ सहयोग कर रहा है, एथेनॉल उत्पादन में ब्राजील के अनुभवों से सीख रहा है और बुलेट ट्रेन परियोजना में जापान की तकनीकी सहायता का लाभ उठा रहा है। लेकिन इन सभी प्रयासों का नेतृत्व और दिशा भारत के हाथ में है।

भविष्य की योजनाएँ भी इसी सोच को आगे बढ़ाती हैं। सरकार का लक्ष्य है कि वर्ष 2030 तक रेलवे को हरित ऊर्जा की दिशा में तेजी से आगे बढ़ाया जाए, हाइड्रोजन कॉरिडोर विकसित किए जाएँ, बड़े शहरों को आधुनिक रेल और मेट्रो नेटवर्क से जोड़ा जाए तथा एथेनॉल उत्पादन में और वृद्धि की जाए, ताकि किसान समृद्ध हों और देश ऊर्जा के क्षेत्र में अधिक आत्मनिर्भर बन सके।

इस अधियान में आम नागरिक की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। जब हम स्वदेशी उत्पादों को प्राथमिकता देते हैं, सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करते हैं और स्वच्छ ऊर्जा के प्रयासों का समर्थन करते हैं, तब हम भी आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में सहभागी बनते हैं। भारत आज ऐसे मोड़ पर खड़ा है, जहां से आगे बढ़ने का रास्ता स्पष्ट दिखाई देता है। बुलेट ट्रेन की गति, हाइड्रोजन ट्रेन की स्वच्छता और एथेनॉल की ऊर्जा-यै तीनों मिलकर नए भारत की पहचान गढ़ रहे हैं। यह पहचान आत्मविश्वास, नवाचार और आत्मनिर्भरता की है। यही वह यात्रा है, जो भारत को केवल विकासशील राष्ट्र नहीं, बल्कि वैश्विक नेतृत्व की दिशा में आगे बढ़ाने का आधार बनेगी।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

80 प्रतिशत भारतीय टो जाने का एहसास कर रहे हैं। यह केवल एक आंकड़ा नहीं, बल्कि डिजिटल इंडिया के दावों पर गंभीर सवाल है। जब तक डिजिटल सेवाओं में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित नहीं होगी, तब तक डिजिटल इंडिया का सपना अधूरा ही रहेगा। ओटीटी कंपनियों मनोरंजन के नाम पर ग्राहकों को ऐसे डिजिटल जाल में फंसा रही हैं, जहां उनकी जेब चुपचाप खाली होती रहती है। यह केवल 99 या 199 रुपये का मामला नहीं, बल्कि उपभोक्ताओं के भरोसे का प्रश्न है। जब 1.18 लाख से अधिक लोग एक स्वर में कह रहे हैं कि वे ठगे गए हैं, तो कार्रवाई तुरंत होनी चाहिए। यदि अब भी नियामक नहीं जागे, तो कल यही तरीका हर ऐप और हर वेबसाइट अपना लेगी। ग्राहक भगवान होता है, गुलाम नहीं, और लोकतंत्र में किसी को भी लूट की छूट नहीं मिल सकती। लोकलसर्किल्स के ताजा सर्वे ने इस समस्या को गंभीरता उजागर कर दी है। देश के 324 जिलों से 1.18 लाख से अधिक लोगों ने अपनी राय दी। इनमें 61 प्रतिशत पुरुष और 39 प्रतिशत महिलाएँ थीं। सर्वे के अनुसार

ओटीटी धोखाधड़ी का डिजिटल मकड़जाल....

आखिर कब टूटेगा सब्सक्राइबर की जेब पर डाका

सर्वे में जब लोगों से पूछा गया कि क्या उन्हें किसी ऐप, वेबसाइट या ओटीटी सेवा को बंद करने में परेशानी हुई, तो 38 प्रतिशत ने कहा कभी-कभी, 32 प्रतिशत ने कहा अक्सर और 22 प्रतिशत ने कहा बहुत ज्यादा। केवल 9 प्रतिशत लोगों ने कहा कि उन्हें कभी परेशानी नहीं हुई। यानी 91 प्रतिशत लोग किसी न किसी स्तर



पर इस समस्या से जूझ चुके हैं। एक नेटफिलक्स, अमेजन प्राइम, डिज्नी+

अन्य सवाल में 40 प्रतिशत लोगों ने माना कि ओटीटी सेवा बंद करने के बाद भी उनके खाते से पैसे कटते रहे। वहीं, अतिरिक्त या छिपे हुए शुल्क के बारे में पूछे जाने पर 61 प्रतिशत लोगों ने स्वीकार किया कि उनसे कई बार बिना स्पष्ट जानकारी के अतिरिक्त राशि वसूली गई। यह स्थिति उपभोक्ता अधिकारों का खुला उल्लंघन है। इस समस्या के लिए केवल कंपनियाँ ही नहीं, बल्कि व्यवस्था भी जिम्मेदार है। एजेंसियों ने डार्क पैटर्न अपनाते पर बड़ी कंपनियों पर करोड़ों डॉलर के जुर्माने लगाए हैं। इसके विपरीत भारत में अब तक किसी बड़ी ओटीटी कंपनी

पर इस तरह की ठोस कार्रवाई नहीं हुई है। अब समय आ गया है कि सरकार डार्क पैटर्न पर स्पष्ट कानून लागू करे। ओटीटी ऐप पर सदस्यता रद्द करने का विकल्प उतना ही आसान और स्पष्ट होना चाहिए जितना सदस्यता लेने का विकल्प होता है। ऑटो-रिन्यूअल से कम से कम सात दिन पहले एसएमएस और ईमेल के माध्यम से अलियाव सूचना दी जाए तथा एक क्लिक में सदस्यता समाप्त करने की सुविधा उपलब्ध हो। सेवा बंद करने के बाद यदि पैसे कटते हैं तो 48 घंटे के भीतर स्वतः रिफंड मिले और उल्लंघन करने वाली कंपनियों पर कठोर आर्थिक दंड लगाया जाए। साथ ही, उपभोक्ताओं को भी सतर्क रहना होगा। फ्री ट्रायल लेते समय सीमित राशि वाले कार्ड का उपयोग करें, ऑटो-रिन्यूअल बंद रखें, बैंक स्टेटमेंट नियमित रूप से जांचें और किसी भी अनधिकृत कटौती की शिकायत तुरंत राष्ट्रीय उपभोक्ता हेल्पलाइन 1915 या संबंधित मंच पर दर्ज कराएँ। डिजिटल सुविधा तभी सार्थक है, जब उसके साथ पारदर्शिता, जवाबदेही और उपभोक्ता का सम्मान भी जुड़ा हो।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)